ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 111-116

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

अवधी लोकगीतों में सामाजिक जीवन :एक अध्ययन

1. डॉ0 माधुरी वर्मा
2. छाया वर्मा

1. एसोसिएट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू परास्नातक महाविद्यालय, बाराबंकी (उ0प्र0), 2. शोध अध्येत्री– समाजशास्त्र विभाग, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या, (उ0प्र0) भारत

Received- 16.11. 2021, Revised- 21.11. 2021, Accepted - 25.11.2021 E-mail: chhayaverma28008@gmail.com

सारांशः ***मनुष्य एक सृजनशील और वैचारिक प्राणी है। अपने चारों ओर घटने वाली सामाजिक और प्राकृतिक घटनाओं से वह बेखबर नहीं रहता है। इन घटनाओं से वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है, अतः वह इनको समझने की कोशिश करता है।अगर वह उसे समझ लेता है तो अभिव्यक्त भी करना चाहता है। तदांतर मानव अपने अब तक के उपार्जित संस्कारों से विभिन्न घटनाओं और मानव जीवन की परिस्थितियों को युगसंदर्भानुरूप या अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ढालकर व्यक्त करता है। यह अभिव्यक्ति ही विभिन्न लोक कलाओं के रूप में हमें प्राप्त होती है। लोक कलाओं में भावाभिव्यक्ति की एक विधा लोकगीत भी हैं। लोकगीत केवल मनोरंजन के साधन ही नहीं होते, बल्कि उनमें कहीं ना कहीं सामाजिक जीवन की सच्चाई छिपी होती है। अनेकों प्रकार की सामाजिक घटनाओं का सुंदर चित्रण लोकगीतों में देखने को मिलता है, जिससे उस समाज की तात्कालिक परिस्थितियों का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिए लोकगीतों को 'समाज का आईना' की संज्ञा भी प्रदान की गई है। इस प्रकार किसी समाज की संस्कृति का परिचय वहां के लोक साहित्य से प्राप्त हो जाता है। किसी देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक, जातीय एवं राष्ट्रीय तथा राजनीतिक स्थिति को मापने का उत्कृष्ट पैमाना लोकगीत होते हैं।***

कुंजीभूत शब्द– सृजनशील, वैचारिक प्राणी, अप्रत्यक्ष रूप, अभिव्यक्त, उपार्जित संस्कारों, युगसंदर्भानुरूप, ऐतिहासिक।

लोकगीत का अर्थ –"लोकगीत लोक के गीत है, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतया लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित, एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक को समर्पित कर देता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह ना करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद की तरंग में जो छंदोबद्ध वाणी उद्भूत करता है वही लोकगीत है।" लोक शब्द को अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का पर्याय माना जाता है, जो नगर तथा ग्राम की समस्त साधारण जनता का है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'लोक'शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है बल्कि नगर व गांवों में फैली हुई समूची जनता है। इसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार साधारण पोथियां नहीं है। यह लोग नगर में परिष्कृत रूप से संपन्न तथा संस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल जीवन के अभ्यस्त होते हैं।"

'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य हैा जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। इसी प्रकारगीत शब्द का अर्थ प्रायः उस कृति से है जो ज्ञेय हो। लोकगीत में ज्ञेयता का होना आवश्यक है। संगीत एवं लय लोकगीत का प्राण है, अतः इसी कारण इन्हें स्वतः स्फूर्त संगीत कहा गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जन साधारण द्वारा रचित और लोक समाज में प्रचलित, लोक विषयक गीतों को 'लोकगीत' कहा जाता है।

लोक गीतों की उत्पत्ति एवं विकास– लोकगीतों की उत्पत्ति उतनी ही प्राचीन मानी जाती है जितना कि स्वयं मानव जीवन। सम्भवतः मानव ने सभ्यता के विकास के साथ–साथ अपनी भावनाओं को लयात्मक रूप में व्यक्त करना सीख लिया होगा, जिसका परिष्कृत रूप आज हमें लोकगीतों के रूप में देखने को मिलता है। किंतु इन लोकगीतों का रचनाकाल और रचयिता प्रायः अज्ञात रहता है, इसलिए इनकी उत्पत्ति और विकास के संबंध में आज भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने लोकगीतों की उत्पत्ति सामूहिक तो कुछ ने व्यक्तिगत मानी है। उदाहरण स्वरूप –"जर्मनी के प्रसिद्ध लोक साहित्य 'विल्यप्रिय' ने लोकगीतों के विषय में सामूहिक उत्पत्ति का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि लोकगीतों का निर्माण सामूहिक रीति से हुआ है। किंतु रूसी साहित्य 'सोकोलोव' ने सामूहिक उत्पत्ति सिद्धांत का खंडन किया है और कहां है कि लोकगीतों का सृजन बीज रूप में सर्वप्रथम एक व्यक्ति द्वारा ही हुआ है और फिर मौखिक परंपरा में रहने के कारण यह अन्य व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर संबोधित होता रहा है।

किंतु उपर्युक्त सिद्धांत भी एकांगी प्रतीत हो रहे हैं। वस्तुतः मानवीय ज्ञान के अनंत भंडार और इतिहास के विस्तृत अन्वेषण के पश्चात भी लोकगीतों की उत्पत्ति की तिथि को खोजना संभव नहीं है, क्योंकि यह मानव हृदय की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होते हैं जिन्हें किसी काल विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। डॉ. भीम सिंह मलिक के अनुसार "दूर्वादल की भांति लोकगीतों के मूलों तक पहुंचना दुःसाध्य कार्य है। जिस प्रकार दूर्वा स्थान – स्थान पर मिट्टी से संपर्क स्थापित कर अपनी

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

श्रंखला के नए–नए फूलों का जाल बिछाते चलती है, वैसे ही लोकगीत भी नाना कंठों और स्वरों में विकसित एवं परिष्कृत होता रहता है।" लोकगीतों के रचनाकार अज्ञात होते हैं, किंतु इसका मतलब यह नहीं कि इसका कोई रचयिता ही नहीं था। अधिकांश लोकगीतों के रचनाकारों ने अपने नाम लिपिबद्ध नहीं किए और अगर किसी ने किए भी तो हम उन्हें खोजने में असमर्थ हैं। यदि किसी गीत के रचयिता का नाम मिलता भी है तो भी प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि उस गीत का रचनाकार वही व्यक्ति है, क्योंकि लोकगीतों की परंपरा तब से चली आ रही है जब टंकण विधियां उपलब्ध नहीं थी और लोकगीत मौखिक परंपरा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्वतः ही हस्तांतरित होते रहते थे। वस्तुतः किसी भी व्यक्ति को लोकगीतों का प्रथम रचयिता मानकर उनकी उत्पत्ति का समय निर्धारित करना सर्वथा भ्रामक कार्य होगा। यह परंपरा से चली आ रही लोकमानस के साधारण अभिव्यक्ति की एक प्रक्रिया है, जो आज भी विद्यमान है।

लोकगीतों के प्रकार – मानव जीवन में आने वाले विभिन्न अवसरों के अनुसार लोकगीतों में भी विभिन्नता पाई जाती है। जैसे बच्चें के जन्म पर सोहर गाए जाते हैं, तो कन्या के विवाह के अवसर पर करुण रस से सिक्त विदाई गीत। हमारे सामाजिक जीवन के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लोकगीतों के प्रमुख प्रकार निम्नवत है –

1. संस्कार गीत
2. पर्व गीत,
3. जातीय गीत
4. ऋतु गीत
5. गाथा गीत/लोकगाथा
6. पेशा गीत/श्रम गीत
7. धार्मिक गीत
8. लोरी गीत/बाल गीत

लोकगीतों का महत्व– लोकगीत मानव जीवन की अनुभूत अभिव्यक्ति और ह्रदयोद्गार होने के साथ–साथ जीवन का स्वच्छ और साफ दर्पण होते हैं, जिसमें मानव के समाज में व्यक्त जीवन का प्रतिबिंब दिखाई देता है। लोकगीत मनुष्य के स्वाभाविक स्पंदनों से जुड़कर कर लोक जीवन की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। लोकगीतों में हमारी मूल संस्कृति जिसे सामान्यता लोक संस्कृति भी कहा जाता है, विरासत के रूप में हमें प्राप्त होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर लोक गीतों के माध्यम से गतिशील रहती है।

वलोकगीतों में लोक विश्वासों, प्रथाओं, परंपराओं और रीति–रिवाजों का स्वाभाविक अंकन होता है जो हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। अतः यदि हमें किसी समाज की संस्कृति के बारे में जानना हो तो वहां प्रचलित लोकगीतों के माध्यम से उस समाज की संस्ति को सरलता पूर्वक जान सकते हैं। वलोकगीतों में मानव जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों की स्पष्ट और वास्तविक झलक प्राप्त होती है। वलोक गीतों के माध्यम से संस्ति का स्वाभाविक रूप से अंतरपीढ़ी हस्तांतरण होता रहता है, इसके लिए अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वकिसी भी समाज में उसके अच्छे और बुरे दो पक्ष होते हैं। लोकगीत एक तरफ जहां अच्छे पक्ष का चित्रण करते हैं तो वहीं दूसरी ओर इसके बुरे पक्ष अर्थात सामाजिक कुरीतियों और उसके दुष्प्रभावों का भी बेबाकी से चित्रण करते हैं और उनसे छुटकारा पाने की बात भी करते हैं। वअंततः लोकगीत सामाजिक मंगल कामना से ओतप्रोत होते हैं तथा सामान्य जनमानस के स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी होते हैं।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय – "अवध वर्तमान उत्तर प्रदेश के एक भाग का नाम है जो प्राचीन काल में कोशल कहलाता था। इसकी राजधानी अयोध्या थी। अवध शब्द अयोध्या से ही निकला है। वर्तमान में इसकी राजधानी लखनऊ है। भौगोलिक रूप से अवध की आधुनिक परिभाषा लखनऊ, कानपुर, सुल्तानपुर, रायबरेली, उन्नाव, प्रयागराज, अयोध्या, अंबेडकर नगर, गोंडा, बहराइच, बलरामपुर, हरदोई, लखीमपुर खीरी, कौशांबी, सीतापुर, श्रावस्ती, उन्नाव, फतेहपुर, (जौनपुर और मिर्जापुर के पश्चिमी हिस्सों) कन्नौज, पीलीभीत और शाहजहांपुर से मिलकर बनती है।" प्रस्तुत अध्ययन में मुख्यतया अयोध्या मंडल के अंतर्गत आने वाले एक जिले 'बाराबंकी' का अध्ययन किया गया है। यह जिला उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से 29 किलोमीटर पूर्व दिशा में स्थित है। बाराबंकी जिले का कुल क्षेत्रफल 3891.5 वर्ग किलोमीटर तथा कुल जनसंख्या 32,60,699 है। यहां की मुख्य भाषा हिंदी (अवधी) है।" इस अध्ययन में आंकड़े एकत्रित करने के लिए मुख्यतया प्राथमिक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अधिकांश प्राथमिक आंकड़े स्वानुभूत हैं तथा अन्य आंकड़ों के लिए प्रत्यक्ष साक्षात्कार के माध्यम से आंकड़े एकत्र किए। द्वितीयक स्रोतों के रूप में पुरानी डायरियां और किताबें तथा सोशल मीडिया मंच जैसे–यूट्यूब आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य– लोकगीत किसी भी मानव समाज के सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग होते हैं। इन लोकगीतों का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देना भी होता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भी अवध क्षेत्र में प्रचलित विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले पारंपरिक लोकगीतों का अध्ययन कर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

अवधी लोकगीतों में विद्यमान सामाजिकता अर्थात उनमें सामाजिक जीवन की झलक और सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति का अध्ययन और विश्लेषण करना है।

अवधी लोकगीतों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति– अवध क्षेत्र में प्रचलित अवधी भाषा में गाए जाने वाले लोकगीतों को अवधी लोकगीत के नाम से जाना जाता है। लोक गीतों में जीवन के विभिन्न अवसरों पर मन में उमड़ने वाली भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। फिर चाहे वह विभिन्न संस्कारों की पूर्ति के अवसर हों या पारिवारिक रिश्तो की मिठास और नोकझोंक या फिर सामाजिक जीवन के यथार्थ अनुभव। अवधी लोकगीत जीवन के इन सभी पक्षों को अपने में आत्मसात किए हुए हैं। लोकगीत लोकसंस्कृति की अभिव्यक्ति है। इसी संदर्भ में डॉ. सम्पूर्णानन्द ने कहा है कि "लोकसंस्कृति वह जीती जागती चीज है, जिसके द्वारा लोक की आत्मा बोलती है।" इसका सीधा संबंध ग्रामीण एवं जनजातीय समाज से है। अवधी लोकगीतों में जीवन के विभिन्न अवसरों पर होने वाले संस्कारों में सामाजिकता को बहुत सुंदर तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। एक तरह से अवधी लोकगीत और सोलह संस्कार एक दूसरे के पर्याय के रूप में जनमानस में स्थापित है। जीवन का कोई भी संस्कार इन लोकगीतों के बिना अधूरा ही समझा जाता है। फिर चाहे जन्म हो या विवाह अथवा अन्य कोई अवसर। विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले, सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने में समेटे अवधी लोक गीतों के विभिन्न रंग निम्नवत हैं –

हमारा ग्रामीण समाज आज भी धर्म प्रधान समाज ही है। किसी कार्य का होना या ना होना ईश्वर की इच्छा समझा जाता है, अतः विवाह आदि किसी भी शुभ कार्य की शुरुआत देवी देवताओं की स्तुति से ही की जाती है और उनको प्रथम निमंत्रण दिया जाता है। जैसे– निम्न लोकगीत में मां भवानी की स्तुति कर कार्य को निर्विघ्न संपन्न करने की कामना की जा रही है –

'आऔ भवानी मैया बैठो मोरे अंगना, देबै सतरंगिया बिछाए रे।
गुड़वा घियना केरा होमवा कराइबै, जू जज्ञ पुरयो हमार रे।।'

इसी तरह से बारी–बारी सभी देवी–देवताओं, कुल देवता और ग्राम देवता की स्तुति की जाती है और उन पर अपना अटूट विश्वास प्रकट किया जाता है। उनका यह विश्वास ही संकट के समय में मानसिक संतुलन बनाने का कार्य करता है जिससे वह आने वाली हर बाधा को सहज ही पार कर लेते हैं। यह विश्वास सिर्फ अलौकिक शक्तियों पर ही नहीं होता बल्कि भारतीय जनमानस में सदियों से चली आ रही संयुक्त परिवार प्रणाली में भी अभिव्यक्त होता हुआ दिखता है। यहां परिवार की संयुक्तता की भावना इतनी गहरी है कि अपने परिवार के मृतक पूर्वजों को भी विवाह आदि में आमंत्रित किया जाता है। यहां विवाह के कुछ दिन पूर्व ही विभिन्न रस्मों को संपन्न किया जाता है। उन्हीं रस्मों में 'सांझ मनाने में गाया जाने वाला आमंत्रण गीत देखिए जिसमें पूर्वजों के आने की बात कही जा रही है–

'नीले नीले घोड़वा सवार, तौ बाबा मोरे आवैं।
हाथे चाबुक सिर छतुरी, तौ बाबा मोरे आवैं।
पहिने हैं लहरपटोरू, तौ सांझि मनावैं।।'

इसी तरह से सभी ज्ञात पूर्वजों के नाम लेकर और अज्ञात पूर्वजों को 'सबजने कहकर बुलाया जाता है। पारिवारिक लगाव का ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिलना मुश्किल है। किंतु इन्हीं संयुक्त परिवारों में कुछ कमियां भी हैं। जैसे सर्वगुण संपन्न होने पर भी बिना संतान की स्त्री का समाज में जीना मुश्किल हो जाता है। उसे हमेशा इस बात का एहसास करवाया जाता है, जिससे उनमें कुंठा का जन्म होता है जो अन्य समस्याओं को उत्पन्न करता है। ऐसे ही एक गीत में संतान की कामना से एक औरत विभिन्न उपाय करती है किंतु असफल होने पर अंततः आंगन में लगे तुलसी के पेड़ से मन्नत मांगती है, लेकिन इसमें होने वाले खर्चे को लेकर उसकी ननद को आपत्ति है। इस मनोदशा का मोहक चित्रण निम्न लोकगीत में दर्शनीय है–

'अंगने में तुलसी का पेड़वा, तुलसी बड़ी हरीयर, तुलसी बड़ी हरीयर हो।
तुलसी जब हमारे होईहैं होरिलवा, तौ पियरी चढ़ाउबै, तौ पियरी चढ़ाउबै हो।
सासू जी बोलिव ना पाई, ननंद उठि बोली, ननंद उठि बोली हो।
भाभी नईहर से पियरी मंगावौ, तव तुलसी का चढ़ावौ, तौ तुलसी का चढ़ावौ हो।।'

आधुनिक समय में जब व्यक्तिवादिता बढ़ती जा रही है, ऐसे में अवधी लोकगीत आज भी सामूहिकता को समेटे हुए हैं। आपस में कितना ही मनमुटाव क्यों ना हो किंतु बच्चों को भगवान का रूप माना जाता है। बच्चे के जन्म पर घर के लोग और पास पड़ोस की सखियां खुशी की अभिव्यक्ति मंगल गीत गाते हुए करती हैं देखिए–

'जन्मे है कृष्ण कन्हैया, गोकुल में बाजे बधैया हो। नंद मगन मस्त मोतिया लुटावैं, रानी यशोमती झुलुवा झुलावैं

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

बाज रही घर – घर शहनाइयां, गोकुल में बाजै बधैया हो।।'

हमारे गांव आज भी प्राचीन परंपराओं को संजोए हुए हैं। आज के अत्याधुनिक अस्पतालों के दौर में भी दाई का स्थान जन्मोत्सव में महत्वपूर्ण है। भले ही उनकी भूमिका सीमित हो गई है, किंतु समाप्त नहीं हुई–

'मचल रही आज महलों में दाई– 2 कंचन थार सुमित्रा ले ठाड़ी, उनहूं ना लेवै दाई, मचल रही आज महलों में दाई।।'

इतना ही नहीं अन्य रिश्तेदार भी अपने नेग के लिए कहते हैं–

'आधा घर लिपली ननदिया, आधे मा हठ ठाने हो। भाभी दै दियौ सोने के कंगनवा, तौ कजरा लगइबै हो।'

जवाब में भाभी क्या कहती है देखिए–

'ननदी भले चली जाए हो, कंगना नाही दूंगी।'

कहते हैं कि घर के बड़े बुजुर्ग पीपल की छांव के समान होते हैं जो अपनी संतानों को हमेशा शीतलता प्रदान करते हैं। बुजुर्गों के इस स्नेहिल आशीर्वाद की अभिव्यक्ति अवधी लोक गीतों में सर्वदा ही देखने को मिलती रही है। उदाहरण स्वरूप – बच्चे के कुछ बड़ा होने पर उसका मुंडन संस्कार कराया जाता है। इस अवसर पर देखिए घर के बड़े बुजुर्गों का स्नेह कैसे छलक रहा है–

'काले घुंघराले बाल ललना के, दादी उनकी मुंडन करावैं, बाबा करैं बौछार मोहरन की। काले घुंघराले बाल ललना के।।'

इतना ही नहीं मुंडन हो जाने पर एक अबोध बच्चे की मनोदशा क्या होती है, इसका कितना सजीव चित्रण इस लोकगीत में किया गया है–

'मूड़े पर हाथ फेरि पूछै कन्हैया, हमारि घुंघराले बाल का होइगे मैया।।'

इसी प्रकार से अन्य संस्कारों में गाए जाने वाले अवधी लोक गीतों में पग–पग पर सामाजिक व्यवस्था की झलक मिलती है। जैसे– 'जजमानी व्यवस्था हमारे भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता रही है, जिसमें विभिन्न जातियां परस्पर सेवाओं का आदान–प्रदान करती हैं। उदाहरण के तौर पर देखें कि कैसे निम्नलिखित विवाह गीत में नाई से अपनी लड़की के लिए एक सुयोग्य वर तलाश करने के लिए कहा जा रहा है–

'दिन सीता में झलकत देख्यौं, सीता भई वर जोग हो। मचियही बैठी हैं रानी सुनयना, सुनौ नउआ बचन हमार हो। जनक के जोगे समधी ढूंढ्यो ऐ नउआ, सीता जोगे ढूंढ्यो दामाद हो।।'

आजकल सोशल मीडिया का दौर है, किंतु फिर भी शादी आदि शुभ कार्यों का निमंत्रण देने के लिए आज भी नाई को भेजा जाता है–

'पुरबय देश से आईल नउआ, हाथ हरदिया के गांठ जी तोहरे नईहर सीता पडिगा बियहवा, तोहरे भतीजे का बियाह जी।'

दूल्हा और दुल्हन के श्रंगार में भी समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व रहता है। एक चित्रण दृष्टव्य है–

'मलिया लगावै बाग बगीचा, मालिन लगावै फुलवार जी।
फुलवा के मौरा जिन बनायो मोरी मालिन, धूप लगे कुम्हलाई जी।'

सामाजिक जीवन में होने वाली खट्टी–मीठी नोकझोंक का चित्रण भी अवधी लोकगीतों में बेहद खूबसूरती से किया गया है। जैसे– छोटे बच्चे जब किसी पड़ोसी का कुछ नुकसान कर देते हैं तो वे शिकायत करने आते हैं जिसको सामान्यता बोलचाल की भाषा में 'उलाहना देनाश कहा जाता है। इससे उनके समाजीकरण की प्रक्रिया का धीरे–धीरे विकास होता रहता है। देखिए इस विवाह गीत में–

मोरे पिछवारे सुपरिया का बिरवा, हीलिंग–बिलिंग गई है डाल रे वहि तरे बईठे हैं
दुलरे दुलहुवा, तूरय सुपरिया की डाल रे।
तख्त चढ़ि बईठे हैं दूलहे के बाबा, मालिनि ओरहन देई रे।
बरजौ रे बरजौ बाबा अपना दुलरुआ, तूरय सुपरिया की डाल रे।'

एक बेटी के विवाह के समय एक मां की क्या मनोदशा होती है इसका हृदयस्पर्शी चित्रण कितना मुखर हो उठा है–

छिछली मऊनिया बेटी खेलहु ना जानी, झरहिव ना जानी लंबे केश हो। ते मोरी बेटी चौक चढ़ी बइठी, मैया जी का फटेला करेज हो।'

तो दूसरी तरफ बेटी भी अनजान घर में सामंजस्य ना बैठा पाने की आशंका से ग्रस्त है और मां से कहती है–

'सीखहिउ ना पाई मैया गुन औ सहुरवा, सीखेंउ ना राम रसोई हो। सासु ननंद मोरा मैया गरियइ हैं, हमरा से सहइव न जाई हो।।'

हमारे समाज में जहां एक तरफ बेटियों को लक्ष्मी का रूप माना जाता है, तो वहीं दूसरी तरफ उनको पराया धन

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

भी समझा जाता है जिसको विवाह कर दूसरे घर जाना है। कन्यादान की रस्म इसी विचार का प्रतीक है, जो निम्न भांवर गीत में स्पष्ट हो रही है–

पहली कियरिया में जौ बोएव बाबुल, दुसरी कियरिया में धान रे।
तीसरी कियरिया में तुम बैठो बाबुल, देव कुमारी का दान रे।'

इसी तरह विवाह एक पवित्र बंधन माना गया है जो सात फेरों से बनता है और जन्मों–जन्मों के साथ का प्रतीक होता है। सन् 1982 में आई अवधी फिल्म 'नदिया के पार' में इसी भाव का मर्मस्पर्शी प्रस्तुतीकरण देखने को मिलता है–

बबुआ हो बबुआ, पहुना हो पहुना, जब तक पूरे ना हो फेरे सात,
तब तक दुलहिन नहीं दुलहा की, रे तब तक बबुनी नहीं बबुआ की।।'

विवाह के पश्चात एक लड़की के लिए अनजान जगह और अनजान लोगों से सामंजस्य बैठाना आसान नहीं होता। अवधी लोकगीतों में इसका भी समाधान दिखता है। आने वाले जीवन के लिए लड़की को पहले से ही तैयार कर दिया जाता है। समाजशास्त्रीय भाषा में कहीं तो 'प्रत्याशित समाजीकरण' कर दिया जाता है। इस स्थिति की पूर्ण अभिव्यक्त निम्न लोकगीत में हो रही है, जिसमें घरवालों की आशंकाओं का समाधान करती हुई लड़की कह रही है–

'कवन–कवन गुन सीखेउ मोरी बेटी, राख्यो जो मनवा हमार हो।
सेजिया से उठबै, सेजिया बटोरबै, खाबै बेलहरी के पान हो।
अंगना बहार बाबा, चौका लगाईबै, बर्तन मांजबै विचार हो।
छोटी ननंद का बहिन अस जनबै, छोटका देवर सग भाय हो।।'

अगर देखा जाए तो उपर्युक्त पंक्तियों में पूरे गृहस्थ जीवन का सार छुपा हुआ है। क्योंकि एक स्त्री ही परिवार की धुरी होती है। अगर वह सुशिक्षित और संस्कारी तथा गृह कार्य में निपुण हो तो गृहस्थ जीवन के संचालन में कोई विशेष बाधा नहीं आती है, किंतु स्थित इसके विपरीत होने पर परिणाम भी विपरीत ही मिलते हैं। जिससे पारिवारिक विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और बाल अपराध, तलाक आदि के मामले बढ़ जाते हैं जो अंततः सामाजिक विघटन का कारण बनते हैं। अतः इस स्थिति से बचने के लिए और पारिवारिक वातावरण सौहार्दपूर्ण बनाए रखने के लिए पहले से ही ऐसे संस्कार दिए जाते हैं कि विवाह के बाद नए माहौल में कोई समस्या ना उत्पन्न हो और पारिवारिक जीवन सुचारु रुप से चलता रहे। चूंकि परिवार ही समाज की प्राथमिक इकाई होती है अतः जब परिवार व्यवस्था सुचारु रुप से चलती है तो समाज में विघटन की समस्या भी इतनी अधिक नहीं होती। अवधी लोक गीतों में इस आशय को संजीदगी से संजोया गया है। संपूर्ण समाज के बारे में सोचने वाली ऐसी 'सामाजिक समरसता' का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

अवधी लोकगीतों में मानव ह्रदय के स्पंदनों का भी कुशल चित्रांकन मिलता है। एक पिता अपनी बेटी को अनेक कठिनाइयां सहकर भी नाजों से पाल – पोस कर बड़ा करता है किंतु सामाजिक परंपराओं और रीति–रिवाजों से विवश होकर उसे उसका विवाह कर विदा करना पड़ता है। विदाई के वक्त कितना कारुणिक .श्य होता है, इसका चित्रण अवधी लोकगीत बखूबी करते हैं–

बड़ा रे कठिनवा से सिया धिया पाय्ल्यों, राम बियाहि लई जाएं रे।
बाबाजी रोवईं अपनी महालिया, मैया जी राम रसोई रे।
मैया जी रोवईं डोलिया के बांस धरि के, सखी सब मड़ये मां ठाढि रे।।'

विवाह आदि शुभ अवसरों पर एक दूसरे से मीठी नोंक–झोंक और हंसी मजाक भी होता है, जिनके शब्द कभी शालीन तो कभी–कभी शालीनता की सीमा पर करते प्रतीत होते हैं किंतु लोग उनका बुरा नहीं मानते। देखिए कैसे दूल्हा– दुल्हन के मंडप में मिलन के समय सखियां दूल्हे को छेड़ते हुए कह रही हैं–

'फुलवरिया में आई बहार, भंवरवा रस लूटे।'

इसी तरह जेवनार के समय का एक मनोहर गारी गीत जिसमें भगवान राम के जेवनार के माध्यम से मीठी गाली दी जा रही है–

'जब श्री राम जनकपुर गइले, घर घर छाई उजियारी कि हां जी।
निहुर – निहुरे परसैं जनक जी, धोतिया धूमिल होई जाई कि हां जी।
जेवन बैठे हैं चारों भैय्या, देत सखीन्ह सब गारी कि हां जी। सखी सब गावैं जेवनारी की हां जी।
इन गारी का बुरा ना मानो, गारी हैं प्रेम पियारी कि हां जी।।'

उपर्युक्त पंक्तियों में टायलर के 'परिहास संबंधों' की अवधारणा के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं, जिसमें कुछ संबंधियों से हंसी–मजाक का रिश्ता होता है और समाज में इसको बुरा नहीं समझा जाता।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

इन संबंधियों से इतर पति–पत्नी का सरस परिहास निम्नांकित कजरी गीत में कुछ यूं व्यक्त हो रहा है–

धना हो खोलि दा केवड़िया, हम विदेशवा जइबै ना। जो पिया मोरे तुम जइहौ रे विदेशवा, हो कि जइहौ रे विदेशवा। तौ हमरे भैया का बोलवाइ दा, हम नईहरवा जइबै ना।'

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि अवधी लोकगीत केवल मनोरंजन के लिए गाए जाने वाले गीत ही नहीं है बल्कि सामाजिक जीवन के विभिन्न रंगों को अपने में समेटे हुए हैं, जो समय – समय पर अवसर के अनुकूल व्यक्त होते रहते हैं। इन संगीतमयी अभिव्यक्तियों में सामाजिक जीवन की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. http://hi.m.wikipedia-org/wiki.
2. दिवेदी, हजारी प्रसाद, जनपद, वर्ष–1 पृष्ठ– 65.
3. saptswargyan.in.
4. मलिक डॉ भीम सिंह हरियाणा के लोकगीत सांस्तिक मूल्यांकन पृष्ठ . 7, 8.
5. विकीपीडिया ।
6. http://barabanki-nic-in.
7. नदिया के पार, 1982, निर्देशक – गोविंद मुनीश, निर्माता– ताराचंद बड़जात्या, राजश्री प्रोडक्शंस ।

*****